

प्राचीन यौगिक शास्त्र 'हठयोगप्रदीपिका' के आसनों की सामाजिक उपयोगिता

तस्वीर सिंह¹, प्रो० सोमादास², डॉ० अर्पित कुमार दुबे³

¹शोध-छात्र, योग विभाग, ²शोध-निर्देशक, दर्शन विभाग, ³सह-शोध-निर्देशक

^{1,2}मोनाड विश्वविद्यालय, हापुड़, उत्तर प्रदेश

³मो.दे.रा.योग संस्थान, नई दिल्ली

सारांश: भारतीय ज्ञान परंपरा में योग केवल एक शारीरिक व्यायाम पद्धति नहीं, बल्कि जीवन को सर्वांगीण संतुलन, स्वास्थ्य और आध्यात्मिक चेतना प्रदान करने वाला एक अनुभूत विज्ञान है। भारतीय वांग्मय में योग की परंपरा अत्यंत प्राचीन एवं समृद्ध रही है। वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक योग ने मानव चेतना को परिष्कृत करने के साथ-साथ समाज को सुगठित, स्वस्थ और संतुलित बनाए रखने में केंद्रीय भूमिका निभाई है। यद्यपि योग का चरम लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार अथवा कैवल्य प्राप्ति रहा है, तथापि साधन पक्ष विशेष रूप से 'आसन' का प्रभाव व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। स्वस्थ और संतुलित व्यक्तियों से ही एक समर्थ समाज का निर्माण संभव होता है; इसी दृष्टि से योग और आसनों की सामाजिक उपादेयता स्वयंसिद्ध है।

योग परंपरा का ऐतिहासिक विकास ऋग्वेद के मंत्रों से प्रारंभ होकर उपनिषदों, महाकाव्यों और स्मृति ग्रंथों से होता हुआ शास्त्रीय एवं हठयोगीय परंपरा तक विस्तृत हुआ है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में सर्वप्रथम शारीरिक मुद्रा (आसन), प्राणायाम और ध्यान के व्यवस्थित अभ्यास से उत्पन्न होने वाले प्राथमिक लक्षणों जैसे शरीर में हल्कापन, निरोगता, विषय-लोलुपता का अभाव और मुखमंडल की कांति का वर्णन मिलता है। यह इस तथ्य का प्रमाण है कि उपनिषद् काल में भी शारीरिक शुद्धि और स्वास्थ्य को समाज में एक संतुलित जीवन जीने का अनिवार्य आधार माना गया था।

मुख्य संकेतक : प्राचीन यौगिक शास्त्र 'हठयोगप्रदीपिका' के आसनों की सामाजिक उपयोगिता

I. परिचय

भूमिका

भारतीय ज्ञान परंपरा में योग केवल एक शारीरिक व्यायाम पद्धति नहीं, बल्कि जीवन को सर्वांगीण संतुलन, स्वास्थ्य और आध्यात्मिक चेतना प्रदान करने वाला एक अनुभूत विज्ञान है। भारतीय वांग्मय में योग की परंपरा अत्यंत प्राचीन एवं समृद्ध रही है। वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक योग ने मानव चेतना को परिष्कृत करने के साथ-साथ समाज को सुगठित, स्वस्थ और संतुलित बनाए रखने में केंद्रीय भूमिका निभाई है। यद्यपि योग का चरम लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार अथवा कैवल्य प्राप्ति रहा है, तथापि साधन पक्ष विशेष रूप से 'आसन' का प्रभाव व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। स्वस्थ और संतुलित व्यक्तियों से ही एक समर्थ समाज का निर्माण संभव होता है; इसी दृष्टि से योग और आसनों की सामाजिक उपादेयता स्वयंसिद्ध है।

योग परंपरा का ऐतिहासिक विकास ऋग्वेद के मंत्रों से प्रारंभ होकर उपनिषदों, महाकाव्यों और स्मृति ग्रंथों से होता हुआ शास्त्रीय एवं हठयोगीय परंपरा तक विस्तृत हुआ है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में सर्वप्रथम शारीरिक मुद्रा (आसन), प्राणायाम और ध्यान के व्यवस्थित अभ्यास से उत्पन्न होने वाले प्राथमिक लक्षणों जैसे शरीर में हल्कापन, निरोगता, विषय-लोलुपता का अभाव और मुखमंडल की कांति का वर्णन मिलता है। यह इस तथ्य का प्रमाण है कि उपनिषद् काल में भी शारीरिक शुद्धि और स्वास्थ्य को समाज में एक संतुलित जीवन जीने का अनिवार्य आधार माना गया था।

श्रीमद्भगवद्गीता ने योग को संन्यास अथवा एकांत साधना की सीमाओं से बाहर निकालकर विशुद्ध सामाजिक कर्मक्षेत्र में स्थापित किया। गीता में "समत्वं योग उच्यते" (समत्व भाव ही योग है) तथा "योगः कर्मसु कौशलम्" (कर्मों में कुशलता ही योग है) कहकर यह स्पष्ट किया गया कि जब तक व्यक्ति का शरीर और मन सुदृढ़ तथा एकाग्र नहीं होंगे, तब तक वह अपने सामाजिक कर्तव्यों (स्वधर्म)

का निष्ठापूर्वक निर्वहन नहीं कर सकता। गीता के छठे अध्याय में स्थिर एवं पवित्र आसन पर बैठने का निर्देश चित्त की एकाग्रता और आत्म-नियंत्रण के लिए दिया गया है, जो सामाजिक सौहार्द और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के लिए अनिवार्य है।

महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योगसूत्र (अष्टांग योग) में आसन को अष्टांग के तीसरे अंग के रूप में मान्यता मिली। पतंजलि ने "स्थिरसुखमासनम्" सूत्र के माध्यम से आसन को स्थिरता और सुखप्रद अवस्था के रूप में परिभाषित किया तथा "ततो द्वन्द्वानभिघातः" कहकर यह सिद्ध किया कि आसनों की सिद्धि से व्यक्ति शीतोष्ण, सुख-दुःख जैसे द्वंद्वों से अप्रभावित रहता है। सामाजिक दृष्टि से यह द्वंद्वतीत अवस्था व्यक्ति को सामाजिक संघर्षों, तनाव और मानसिक विकारों से मुक्त कर सह-अस्तित्व की भावना विकसित करने में सहायक बनती है।

हठयोगप्रदीपिका (१४वीं-१५वीं शताब्दी) की रचना से पूर्व हठयोग परंपरा में कई महत्वपूर्ण ग्रंथ रचे जा चुके थे, जिनमें आसनों के दैहिक और सामाजिक आरोग्य पक्ष को प्रमुखता दी गई—

वसिष्ठ संहिता— इसमें विभिन्न आसनों के शास्त्रीय स्वरूप और उनके स्वास्थ्य लाभों का विस्तार से विवेचन किया गया है, जो गृहस्थ और साधक दोनों के लिए उपयोगी हैं।

गोरक्ष शतक एवं सिद्ध सिद्धांत पद्धति— गुरु गोरखनाथ द्वारा प्रतिपादित इन ग्रंथों में 'पिण्ड-ब्रह्माण्ड' की अवधारणा के तहत शरीर को साधना का आधार मानकर आसनों के माध्यम से व्याधियों के निवारण पर बल दिया गया।

मध्यकाल में जब समाज बाह्य आक्रमणों, शारीरिक दुर्बलता और सामाजिक विषमताओं से जूझ रहा था, तब स्वामी स्वात्माराम द्वारा विरचित 'हठयोगप्रदीपिका' ने आसनों को शारीरिक स्थिरता, आरोग्य और स्फूर्ति "कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्" के सशक्त माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य इसी पृष्ठभूमि में हठयोगप्रदीपिका में वर्णित आसनों के व्यावहारिक स्वरूप और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनकी सामाजिक उपयोगिता का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है।

II. हठयोगप्रदीपिका का परिचय

हठयोगप्रदीपिका हठयोग परंपरा का सर्वमान्य, सर्वाधिक प्रामाणिक एवं आधारभूत ग्रंथ है। इसकी रचना लगभग १४वीं-१५वीं शताब्दी के मध्य स्वामी स्वात्माराम द्वारा की गई। 'हठ' शब्द में 'ह' (सूर्य/पिंगला नाड़ी/प्राण शक्ति) और 'ठ' (चंद्र/इडा नाड़ी/मानसिक शक्ति) का सामंजस्य दर्शाया गया है। अतः हठयोग का मौलिक अर्थ प्राण और अपान तथा मानसिक व प्राणिक शक्तियों का संतुलन स्थापित कर सुषुम्ना नाड़ी में प्राण का प्रवाह सुनिश्चित करना है।

स्वामी स्वात्माराम ने इस ग्रंथ के आरंभ में ही यह स्पष्ट किया है कि हठयोग कोई स्वतंत्र या पृथक मार्ग नहीं, बल्कि राजयोग (समाधि/आत्म-साक्षात्कार) तक पहुँचने की व्यावहारिक सीढ़ी है— "केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिष्यते"। (ह.प्र. १/२)

पतंजलि के अष्टांग योग के विपरीत, हठयोगप्रदीपिका में चतुरंग योग की व्यवस्था दी गई है, जो चार उपदेशों (अध्यायों) में विभक्त है—

प्रथम उपदेश (आसन)— यौगिक वातावरण, साधक-बाधक तत्व, यम-नियम और १५ प्रमुख आसनों का विधिपूर्वक वर्णन।

द्वितीय उपदेश (प्राणायाम व षट्कर्म)— नाड़ी-शोधन, षट्कर्म (धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, कपालभाति) एवं अष्ट कुम्भक।

तृतीय उपदेश (मुद्रा एवं बंध)— कुण्डलिनी जागरण हेतु १० प्रमुख मुद्राओं (महामुद्रा, मूलबंध, जालंधर आदि) का विवेचन।

चतुर्थ उपदेश (नादानुसंधान व समाधि)— चित्त-लय, नादानुसंधान की चार अवस्थाएँ (आरंभ, घट, परिचय, निष्पत्ति) और राजयोग की स्थिति।

III. आसन के लक्षण हठयोगप्रदीपिका के अनुसार

हठयोग में आसन केवल बैठने की स्थिति नहीं, बल्कि देह-शुद्धि, ऊर्जा-संतुलन और रोग-निवारण का प्रमुख साधन है। हठयोगप्रदीपिका (१/१७) में आसन के तीन प्रमुख उद्देश्य और लक्षण बताए गए हैं:

हठस्य प्रथमाङ्गत्वादासनं पूर्वमुच्यते।

कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्॥ (ह.प्र. १/१७)

हठयोग के प्रथम अंग के रूप में आसन साधक को निम्नलिखित तीन प्रमुख लाभ और लक्षण प्रदान करता है:

स्थैर्यम्— शारीरिक दृढ़ता, स्नायु तंत्र की स्थिरता और मानसिक एकाग्रता है। यह व्यक्ति के भीतर से अधीरता, चंचलता और तनाव को दूर कर मानसिक संतुलन स्थापित करता है।

आरोग्यम्- वात, पित्त और कफ जैसे त्रिदोषों के संतुलन तथा समस्त शारीरिक व मानसिक व्याधियों के निवारण से है। स्वस्थ व्यक्ति ही समाज में पूर्ण क्षमता से योगदान दे सकता है।

अङ्गलाघवम्- शरीर में हल्कापन, स्फूर्ति और लचीलापन है। यह शरीर और मन से भारीपन, तन्द्रा तथा आलस्य को समाप्त कर सक्रिय सामाजिक भागीदारी को प्रेरित करता है।

IV. हठयोगप्रदीपिका में वर्णित आसनों के प्रकार एवं लक्षण

स्वामी स्वात्माराम ने हठयोगप्रदीपिका के प्रथम उपदेश में कुल १५ प्रमुख आसनों का सविस्तार वर्णन किया है। इनमें से ११ आसन शरीर-संवर्धन, संतुलन और रोग-निवारक हैं, जबकि अंतिम ४ आसनों (सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन) को ध्यानात्मक एवं सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

१. स्वस्तिकासन- दोनों जानुओं (घुटनों) और ऊरुओं (जांघों) के मध्य दोनों पैरों के तलवों को भली-भाँति स्थापित करके शरीर को सीधा रखना स्वस्तिकासन कहलाता है। यह एक प्रारंभिक ध्यानात्मक आसन है जो मेरुदंड को सीधा रखता है और शारीरिक स्थिरता प्रदान करता है।

२. गोमुखासन- बाएं पैर की एड़ी को दाएं नितंब के पास और दाएं पैर की एड़ी को बाएं नितंब के पास इस प्रकार रखना कि दोनों घुटने एक के ऊपर एक आ जाएँ। यह स्थिति गाय के मुख के समान प्रतीत होती है। यह वक्षस्थल का विस्तार करता है, फेफड़ों की कार्यक्षमता बढ़ाता है और कंधों व पीठ की जकड़न दूर करता है।

३. वीरासन- एक पैर के तलवे को दूसरी जांघ के नीचे स्थापित करना और दूसरे पैर को स्थिर रखना वीरासन कहलाता है। यह जांघों और पैरों की मांसपेशियों को सुदृढ़ बनाता है तथा साधक में मानसिक साहस और एकाग्रता का विकास करता है।

४. कूर्मासन- दोनों पैरों की एड़ियों को गुदाद्वार के नीचे विपरीत दिशा में दबाकर बैठना और शरीर को कछुए के समान संतुलित रखना कूर्मासन है। यह मूलाधार चक्र को उत्तेजित करता है तथा इंद्रिय-प्रत्याहार (इंद्रियों को अंतर्मुखी करने) में सहायक है।

५. कुक्कुटासन- पद्मासन की स्थिति में दोनों हाथों को जांघों और पिंडलियों के बीच से निकालकर भूमि पर टिकाना और पूरे शरीर को ऊपर उठाना कुक्कुटासन कहलाता है। यह भुजाओं, कलाईयों और कंधों को अत्यधिक बल प्रदान करता है तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

६. उत्तानकूर्मासन- कुक्कुटासन की स्थिति में दोनों हाथों से गर्दन को पीछे से पकड़कर पीठ के बल चित्त लेट जाना उत्तानकूर्मासन कहलाता है। यह मेरुदंड के लचीलेपन को बढ़ाता है और उदर के आंतरिक अंगों की मालिश कर पाचन तंत्र को सुदृढ़ करता है।

७. धनुरासन- पैरों के अंगूठों को हाथों से पकड़कर कान तक इस प्रकार खींचना जैसे धनुष पर बाण चढ़ाया गया हो। यह रीढ़ की हड्डी को लचीला बनाता है, जठराग्नि को तीव्र करता है और सुस्ती व मोटापे को दूर करता है।

८. मत्स्येन्द्रासन- दाएं पैर को मोड़कर बाएं नितंब के पास और बाएं पैर को दाएं घुटने के बाहर रखकर धड़ को घुमाना और पैर के अंगूठे को पकड़ना। यह आसन जठराग्नि को तीव्र करता है, समस्त भयानक रोगों का नाश करने वाला अस्त्र है, कुण्डलिनी जागरण करता है और सहस्रार से स्रावित होने वाले चंद्रामृत को क्षय होने से रोकता है।

९. पश्चिमोत्तानासन- दोनों पैरों को सामने सीधा फैलाकर हाथों से पैरों के अंगूठे पकड़ना और मस्तक को घुटनों पर लगाना। यह प्राण वायु को सुषुम्ना नाड़ी (पश्चिम मार्ग) में प्रवाहित करता है, जठराग्नि को तीव्र करता है, उदर को पतला/सुडौल बनाता है और शरीर को पूर्ण निरोगता प्रदान करता है।

१०. मयूरासन- दोनों हथेलियों को भूमि पर रखकर दोनों कोहनियों को नाभि के दोनों ओर टिकाना और पूरे शरीर को मयूर के समान समानांतर ऊपर उठाना। यह गुल्म और उदर के समस्त रोगों को नष्ट करता है, वात-पित्त-कफ त्रिदोषों को सम करता है, जठराग्नि को इतना प्रचंड बनाता है कि साधक कालकूट विष को भी पचाने में सक्षम हो जाता है।

११. शवासन- भूमि पर शव (मूर्दे) के समान पीठ के बल शिथिल होकर लेटना शवासन कहलाता है। यह शारीरिक व मानसिक थकान (श्रम) को मिटाता है और चित्त को परम विश्रान्ति प्रदान करता है।

चार प्रमुख ध्यानात्मक आसन- हठयोगप्रदीपिका के अनुसार, चौरासी आसनों में से पंद्रह श्रेष्ठ हैं और इन पंद्रह में से भी चार आसन (सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन और भद्रासन) सर्वश्रेष्ठ हैं।

१२. सिद्धासन- एक एड़ी को योनि/सीवनी (पेरिनियम) स्थान पर दबाकर दूसरी एड़ी को लिंग के ऊपर स्थापित करना और दृष्टि को भूमध्य में टिकाना। जिस प्रकार यमों में मिताहार और नियमों में अहिंसा श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त आसनों में सिद्धासन सर्वश्रेष्ठ है। यह बहत्तर हजार नाड़ियों के मूल को दूर कर ब्रह्मचर्य और आत्म-ज्ञान प्रदान करता है।

१३. पद्मासन- दाहिने पैर को बाईं जांघ पर और बाएं पैर को दाईं जांघ पर रखकर, हाथों को कमर के पीछे से लेजाकर विपरित पैर के अंगुठों को पकड़ कर नासाग्र दृष्टि रखना। यह आसन समस्त व्याधियों का विनाशक है। यह प्राण के समप्रवाह और कुण्डलिनी जागरण हेतु अनिवार्य ध्यानात्मक आसन है।

१४. सिंहासन- दोनों एड़ियों को सीवनी के दोनों ओर दबाकर बैठना, दोनों हथेलियों को घुटनों पर फैलाना, मुख खोलकर जिह्वा को बाहर निकालना और दृष्टि को भूमध्य (नासाग्र) में रखना। यह तीनों बंधों (जालंधर, उड्डियान, मूल) को सहज रूप से सिद्ध करने वाला श्रेष्ठ आसन है। यह गले, मुख, स्वर-तंत्र और थायरॉइड ग्रंथि के लिए अत्यंत गुणकारी है।

१५. भद्रासन- दोनों एड़ियों को अंडकोश के नीचे सीवनी के दोनों ओर मिलाकर रखना, दोनों पैरों के पंजों को हाथों से पकड़ना और जालंधर बंध लगाना। इसे 'गोरक्षासन' भी कहा जाता है। यह समस्त थकान और शारीरिक विकारों को नष्ट करने वाला तथा मूलाधार चक्र को स्थिरता प्रदान करने वाला आसन है।

V. हठयोगप्रदीपिका के आसनों की सामाजिक उपयोगिता

व्यक्ति समाज की मूल इकाई है। जब व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से स्वस्थ और संतुलित होता है, तभी एक सशक्त, उत्पादक और समरस समाज की रचना संभव है। हठयोगप्रदीपिका में वर्णित आसन केवल व्यक्तिगत साधना तक सीमित न रहकर वृहद सामाजिक संदर्भ में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जिनको निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है-

व्य

क्तिगत स्वास्थ्य संवर्धन से सामाजिक आरोग्यता

जीवनशैली जनित व्याधियों का शमन- वर्तमान समाज में असंतुलित दिनचर्या, शारीरिक निष्क्रियता और तनाव के कारण मोटापा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप और पाचन विकार जैसी व्याधियाँ महामारी का रूप ले चुकी हैं। हठयोगप्रदीपिका में वर्णित पश्चिमोत्तानासन, मत्स्येन्द्रासन और मयूरासन जठराग्नि को प्रदीप्त कर चयापचय (मेटाबॉलिज्म) को सुदृढ़ करते हैं तथा आंतरिक अंगों की क्रियाशीलता बढ़ाते हैं।

स्वास्थ्य बजट और समाज पर आर्थिक भार में कमी- जब समाज का प्रत्येक नागरिक नियमित योगाभ्यास द्वारा निरोगी रहता है, तो स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाला अत्यधिक व्यय स्वतः कम होता है, जिससे समाज और राष्ट्र की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है।

VI. मानसिक संतुलन, तनाव-निवारण और सामाजिक समरसता

तनाव व अवसाद का निराकरण- आधुनिक समाज में प्रतिस्पर्धा, असुरक्षा और मानसिक दबाव के कारण अवसाद, अनिद्रा और आक्रामकता में वृद्धि हुई है। ग्रंथ में वर्णित शवासन "चित्तविश्रान्तिकारकम्" तंत्रिका तंत्र को गहन विश्रान्ति प्रदान कर कोर्टिसोल (तनाव हार्मोन) के स्तर को घटाता है।

सामाजिक अपराधों और कलह में कमी- सिद्धासन और पद्मासन जैसे ध्यानात्मक आसन मन की चंचलता को शांत कर सात्विक वृत्तियों को जाग्रत करते हैं। संतुलित चित्त वाला व्यक्ति पारिवारिक और सामाजिक संबंधों में सहिष्णु, धैर्यवान और संवेदनशील व्यवहार करता है, जिससे सामाजिक वैमनस्य और अपराधों की प्रवृत्ति पर अंकुश लगता है।

VII. कार्य-क्षमता एवं सामाजिक उत्पादकता में वृद्धि

आलस्य का निवारण व शारीरिक स्फूर्ति- ग्रंथ का सूत्र "कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्" स्पष्ट करता है कि आसनों से शरीर में हल्कापन और स्फूर्ति आती है।

श्रम-दक्षता- कुक्कुटासन, धनुरासन और वीरासन जैसे आसन मांसपेशियों और अस्थि-तंत्र को सुदृढ़ बनाते हैं। इससे समाज के विभिन्न कार्यक्षेत्रों जैसे उद्योग, कृषि, शिक्षा और अनुसंधान में कार्यरत व्यक्तियों की कार्य-दक्षता, रचनात्मकता और उत्पादकता में गुणात्मक वृद्धि होती है।

VIII. नैतिक उत्थान और सकारात्मक सामाजिक चेतना

हठयोग में आसनों का अभ्यास यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, मिताहार) और नियमों के साथ जुड़ा हुआ है। आसनों के निरंतर अभ्यास से जब व्यक्ति अपने शरीर और इंद्रियों पर नियंत्रण प्राप्त करता है, तब उसमें आत्म-अनुशासन, नैतिक चेतना और परोपकार की भावना विकसित होती है, जो किसी भी स्वस्थ समाज की आधारशिला है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हठयोगप्रदीपिका केवल एक प्राचीन रहस्यवादी या संन्यासी परंपरा का ग्रंथ नहीं है, अपितु यह मानव जीवन के दैहिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक पुनरुत्थान का एक सुव्यवस्थित वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत शोध-अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्वामी स्वात्माराम द्वारा प्रतिपादित पंद्रह आसनों का उद्देश्य मात्र शारीरिक लचीलापन या व्यक्तिगत साधना तक सीमित नहीं है, बल्कि इनका सीधा संबंध मानव समाज के समग्र स्वास्थ्य और संतुलन से है।

आसन के मूल लक्षण- स्थैर्यम् (शारीरिक व मानसिक स्थिरता), आरोग्यम् (रोगमुक्ति) और अङ्गलाघवम् (स्फूर्ति व हल्कापन), व्यक्ति को केवल व्यक्तिगत व्याधियों से ही मुक्त नहीं करते, बल्कि उसे समाज के लिए एक सक्रिय, ऊर्जावान और उत्तरदायी घटक बनाते हैं। आसनों का अभ्यास एक शांत, संतुलित और द्वंद्वतीत चित्त वाला व्यक्ति पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर अधिक संवेदनशील, सहिष्णु और रचनात्मक व्यवहार करता है, जिससे सामाजिक वैमनस्य, कलह और अपराधों में कमी आती है।

वर्तमान इक्कीसवीं सदी के तकनीकी युग में, जहाँ भौतिक प्रगति के समानांतर शारीरिक निष्क्रियता और मानसिक एकाकीपन बढ़ा है, हठयोगप्रदीपिका के आसनों की व्यावहारिक प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है। अतः यह शोध-पत्र प्रमाणित करता है कि हठयोग के आसन व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शांति और नैतिक आचरण का परिष्कार कर एक स्वस्थ, समर्थ, समरस और शांतिमय समाज की स्थापना में अत्यंत प्रभावशाली माध्यम सिद्ध होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गोरखनाथ, गुरु. सिद्ध सिद्धान्त पद्धति. अनुवादक एवं संपादक डॉ. चमनलाल गौतम, संस्कृति संस्थान, २०१०.
2. पतंजलि, महर्षि. पातञ्जलयोगदर्शनम् (व्यासभाष्य एवं तत्ववैशारदी सहित). अनुवादक एवं संपादक डॉ. सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, २०१५.
3. वसिष्ठ, महर्षि. वसिष्ठ संहिता (योगकाण्ड). संपादक स्वामी दिगम्बरजी, डॉ. पी. पीटरसन, और डॉ. एम. वी. भोले, कैवल्यधाम एस.एम.वाय.एम. समिति, २००५.
4. व्यास, वेद. श्रीमद्भगवद्गीता (साधक-संजीवनी टीका). व्याख्याकार स्वामी रामसुखदास, गीताप्रेस, २०१६.
5. शास्त्री, जगदीशलाल, संपादक. उपनिषद्-संग्रह (श्वेताश्वतरोपनिषद् सहित). मोतीलाल बनारसीदास, २००९.
6. स्वात्माराम, स्वामी. हठयोगप्रदीपिका (कैवल्यधाम संस्करण). संपादक स्वामी दिगम्बरजी और पं. रघुनाथशास्त्री कोकाजे, कैवल्यधाम एस.एम.वाय.एम. समिति, २०१८.
7. स्वात्माराम, स्वामी. हठयोगप्रदीपिका (ज्योतिस्ना टीका सहित). अनुवादक एवं संपादक डॉ. चमनलाल गौतम, संस्कृति संस्थान, २०१३.